E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 8 | August 2025

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में मनीषा कुलश्रेष्ठ का रचनात्मक अवदान : एक समकालीन विश्लेषण

डॉ. शची सिंह [1], योगिता वर्धन [2]

[1] शोध निर्देशिका, आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, सिरोही

[2] शोधार्थी, हिन्दी विभाग, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी संकाय, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

शोध सार

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा-साहित्य में मनीषा कुलश्रेष्ठ की रचनात्मक उपस्थिति एक सशक्त विमर्श के रूप में उभरती है जो स्त्री अस्मिता, यौनिकता, सामाजिक यथार्थ, आदिवासी चेतना, मिथकीय प्रतीकों और लोक-संस्कृति जैसे विषयों को गहन संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती है। उनकी कहानियाँ स्त्री को स्मृति, प्रतिरोध और पुनर्रचना की चेतना से युक्त समग्र सत्ता के रूप में चित्रित करती है। उनका शिल्प रैखिकता से मुक्त होकर अनुभव और स्मृति की बहुस्तरीयता पर केंद्रित है जिसमें आंचलिकता और आधुनिकता का संतुलन, प्रतीकों का सशक्त प्रयोग और पात्रों की मनोवैज्ञानिक गहराई विशेष महत्व रखती है। यह शोध-पत्र उनके कथा-साहित्य का समकालीन दृष्टिकोण से विश्लेषण करता है और यह स्थापित करता है कि उन्होंने परंपरा और आधुनिकता के बीच रचनात्मक संवाद की एक नई धारा हिंदी साहित्य में विकसित की है।

बीज शब्द- समकालीन हिंदी कथा-साहित्य, सामाजिक यथार्थ, आदिवासी चेतना, मिथकीय प्रतीक, लोक-संस्कृति, सृजनात्मक प्रतिरोध

इक्कीसवीं सदी का हिंदी कथा-साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक दृष्टि से अत्यंत सक्रिय और परिवर्तनशील रहा है। इस कालखंड में हिंदी कथा-परंपरा ने जहाँ भारतीय जनजीवन की जटिलताओं, संघर्षों और संवेदनाओं को समकालीन दृष्टिकोण से अभिव्यक्त किया, वहीं स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी जीवन, नगरीकरण और भूमंडलीकरण जैसे विषयों को भी केन्द्र में लाकर अपनी प्रासंगिकता सिद्ध की। इस परिवर्तनशील परिप्रेक्ष्य में मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा-साहित्य एक सशक्त उपस्थिति के रूप में सामने आया है जो परंपरा और आधुनिकता, ग्रामीण और शहरी, स्त्री और समाज के अंतर्विरोधों का गंभीर पाठ प्रस्तुत करता है।

"मनीषा कुलश्रेष्ठ का लेखन केवल स्त्री-अनुभवों तक सीमित नहीं है वरन् वह भारतीय जीवन के विविध पक्षों इतिहास, भूगोल, स्मृति, जातीय पहचान, स्त्री की यौनिकता और अस्मिता की जटिलताएँ आदि को अत्यंत संवेदनशीलता और सूक्ष्मता से विश्लेषित करता है। उनका रचनात्मक संसार राजस्थान के पारंपरिक लोकजीवन से लेकर महानगरीय संघर्षों, आदिवासी संवेदनाओं और वैश्विक प्रभावों तक विस्तृत है। वे अपनी भाषा, शैली और दृष्टिकोण में न तो रूढ़ियों को दुहराती हैं और न ही पश्चिमी स्त्रीवाद की नकल करती हैं बल्कि उनका साहित्य भारतीय अनुभवों की आत्मिक व्याख्या करता हुआ पाठक को भीतर तक झकझोरता है।"[1]

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी जिस संक्रमण और आत्मपुनःस्थापन के दौर से गुजर रही है उसमें मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी लेखिकाएँ नये विमर्शों को जन्म देती है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास स्त्री को एक पीड़िता नहीं अपितु विचारशील, जटिल और स्वायत्त व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हैं। शिगाफ़, शालभंजिका, स्वप्नपाश, मल्लिका, सोफिया जैसे उपन्यास और बौनी होती परछाईं, गंधर्वगाथा, कुछ भी तो रूमानी नहीं, कठपुतलियां जैसे कहानी संग्रह

एक ओर तो स्त्री के निजी और सामाजिक संघर्षों को स्वर देते हैं दूसरी ओर वे हिंदी साहित्य में शिल्पगत प्रयोगधर्मिता और भाषिक नवीनता का नया अध्याय भी प्रस्तुत करते हैं।

"उनकी लेखनी का वैशिष्ट्य यह है कि वह न तो प्रतिरोध के नाम पर सतही नारों में उलझती है और न ही स्त्री विमर्श को एकरेखीय दृष्टिकोण से देखती है। मनीषा की स्त्रियाँ समाज से टकराती हुई, संबंधों में द्वंद्व से गुजरती हुई, अपने भीतर की आग और विरासत के बीच पुल बनाती है। वे परंपरा को अस्वीकार नहीं करतीं परंतु उसे आँख मूँदकर स्वीकार भी नहीं करतीं। उनका लेखन स्त्री के आत्मविवेचन की वह प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक दबावों, स्मृतियों, इतिहास और निजी निर्णयों के बीच लगातार संघर्ष चलता रहता है।"[2]

मनीषा कुलश्रेष्ठ जी की रचनाओं में स्त्री मनोविज्ञान को बहुत ही प्रभावी ढंग से उकेरा गया है। एक ओर स्त्री के आधुनिक परिवेश को लेखिका ने अपना केन्द्र बिन्दु माना तो दूसरी ओर सामजिक यथार्थ से जूझती स्त्री, स्वावलम्बी स्त्रियों का वर्णन तथा यौन शोषण का दर्द बखूबी प्रस्तुत किया है। इस परिवर्तनशील परिदृश्य में मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा साहित्य एक विशेष महत्व प्राप्त करता है क्योंकि वह एक ओर जहाँ स्त्री के भीतर के अस्तित्वगत द्वंद्वों को उकेरता है वहीं दूसरी ओर समाज के विविध स्तरों पर व्याप्त असमानताओं, दबावों और छद्म संरचनाओं को भी निरावरण करता है। उनका साहित्य इस युग की उस खोज का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें साहित्यकार अपने समय को केवल देखता नहीं बल्कि उसमें भाग लेकर उसे रचता है।

"एक रचनाकार के रूप में मनीषा कुलश्रेष्ठ लेखन को मात्र भाषा विलास न मानकर उसे मानवीय जीवन की अनिवार्य शर्त मानती हैं। अपने अनुभवों के व्यापक वृत्त में आए समय और सत्य के कुछ विशेष प्रसंगों और विचलित करने वाली स्थितियों को रचनात्मक विवेक और संवेदनात्मक घनत्व से कहानी में ढालकर वे पाठकों से जीवंत संवाद करती हैं। उनकी इस अनवरत कथायात्रा के एक महत्वपूर्ण मुकाम के रूप में उनका नवीनतम कहानी संग्रह किरदार अभी हाल में ही 'राजपाल एंड सन्स' प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। स्त्री-मन, प्रेम, स्वप्न और द्वंद्व की अविस्मरणीय कहानियों को समेटे ये सभी कहानियाँ कुछ दुर्लभ परंतु हमारे ही वक्त के सजीव किरदारों के माध्यम से हमारे समय का आईना हैं।"[3]

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा-संसार का आरंभिक स्वरूप ही इस बात का प्रमाण है कि वह मात्र भावुक स्त्री-अनुभवों को शब्द देने वाली लेखिका नहीं हैं बल्कि गहन अंतर्दृष्टि, विचारशीलता और सामाजिक विमर्श की प्रतिबद्धता से युक्त एक सजग रचनाकार हैं। उनकी आरंभिक कहानियाँ प्रार्थना के बाहर, प्रेतकामना, बिगड़ैल बच्चे, क्या यही वैराग्य आदि महिला मन की जटिल परतों को बहुत ही गहराई और आत्मीयता से उद्घाटित करती हैं। इन कहानियों में नायिका कोई आदर्श पात्र नहीं बल्कि वह स्त्री है जो अपने भीतर की ग्रंथियों, आत्मसंघर्षों और विरोधाभासों से दो-चार होते हुए आत्मबोध की दिशा में अग्रसर होती है।

आरंभिक कहानियों में ही मनीषा की लेखनी ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे न तो स्त्री विमर्श को केवल पुरुष-विरोध तक सीमित रखना चाहती है और न ही परंपरागत कथानकों की पुनरावृत्ति में रुचि रखती हैं। वे समाज की उन अनदेखी परतों को उद्घाटित करती हैं जहाँ स्त्री अपने सामाजिक दायरे में घुटती तो है परंतु वह अपनी चेतना में बंधन स्वीकार नहीं करती। उदाहरण स्वरूप बौनी होती परछाईं जैसे कहानी-संग्रह में स्त्रियाँ अपनी छाया को लघु बनाने वाले समाज से टकराती हैं, अपने स्व को पुनर्परिभाषित करती हैं और उन प्रतीकों का निर्माण करती हैं जो यथार्थ से अधिक उनके भीतरी विवेक को अभिव्यक्त करते हैं। इन कहानियों की प्रतीकात्मकता, भाषिक ताजगी और भावनात्मक गहनता उन्हें समकालीन कथा-साहित्य के सामान्य प्रवाह से भिन्न और विशिष्ट बनाती है।

उनकी भाषा का स्वर न तो अत्यधिक साहित्यिक बनावटीपन लिए होता है, न ही वह कृत्रिम सरलता का सहारा लेता है। वह ठेठ लोक-भाषा, आंचलिक मुहावरे, शहरी बोध और स्त्री के अंतर-जगत की अंत:सुरों को जिस तरह से एकसूत्र में पिरोती हैं, वह उनकी अद्वितीय शैली को स्थापित करता है। उनकी कहानियाँ संवाद और आत्म संवाद के बीच झूलती हुई पाठक को उन अनुभव-क्षेत्रों तक ले जाती हैं जो प्रायः समाज के शोर में दबे रह जाते हैं। यही कारण है कि मनीषा की लेखनी को आरंभ से ही केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं बल्कि वैचारिक व्याख्या और आत्म-निमग्नता का सृजन कहा गया है।

कहानी अन्य समानांतर कई विषयों को भी उठाती है। समाज पुत्री जन्म को किस प्रकार पीड़ाकारी समझता है। उसे पुत्री का जन्म कितना दर्द देता है। इस बात को भी कहानी के माध्यम से वाणी प्रदान की गई है। "पता है अंतू जब हुई तो भाई साहब तमतमा कर घर से बाहर चले गए थे... और हमारी माँ यानी तेरी दादी खूब पछाड़े मार कर रोई थी। चौथी बार भी लड़की... दाई को तो धकिया हो दिया था बिना कुछ दिए-लिए।" बेटी जन्म के कारण पिता बेटी की माँ और उस नवजात बेटी के प्रति भाव कटु रखने लगे थे। "उत्तर में वही दहाड़, कल मरती हो तो आज मर ले। तूने दिया ही क्या हमें ? चार-चार छोरियों के सिवा। तीन तो जस-तस ब्याह दीं। वे दाँत किटकिटाते... अब यह चौथी... इसे तो मैं कुएँ में ही फेंक आऊँगा।"[4] इस प्रकार कहानी कई प्रश्नों को बड़ी सच्चाई के साथ उठाती है।

शालभंजिका की नायिका इतिहास और वर्तमान के बीच झूलती एक ऐसी स्त्री है जो अपने शरीर, स्मृति और परंपरा से संवाद करती है। वहाँ देह कोई बोझ नहीं बल्कि विचार और संवेदना की भूमि है जहाँ वह स्वयं को नए ढंग से परिभाषित करती है। इसी प्रकार पंचकन्या की स्त्रियाँ मिथकीय प्रतीकों के भीतर छिपे स्त्री-विरोधी संदर्भों को तोड़ती हैं और अपने जीवन को स्वयं पुनर्संयोजित करती हैं। लेखिका स्त्री-चरित्रों को केवल परिवार, विवाह या प्रेम तक सीमित नहीं रखतीं बल्कि उन्हें सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक विमर्शों की भूमि पर खड़ा करती हैं। यह दृष्टिकोण न केवल स्त्री विमर्श को व्यापक बनाता है बल्कि साहित्य को एक ऐसी विचारभूमि में परिवर्तित करता है जहाँ स्त्री की आत्मा भी राजनीतिक हो जाती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का स्त्री-दृष्टिकोण अतिरेक से परे है। वे स्त्री-विरोध का रचनात्मक प्रतिरोध रचती हैं किन्तु उसमें सतही क्रोध या शोर नहीं होता। उनका विद्रोह विवेकशील है जो कभी स्मृति में उतरता है, कभी प्रतीक बनकर उभरता है और कभी चुप्पी के रूप में सामने आता है। उनकी स्त्रियाँ उस मौन को भी भाषा में बदल देती हैं जिसे समाज अक्सर सुनने को तैयार नहीं होता। स्वप्नपाश की नायिका के भीतर जो कुंठाएँ, आकांक्षाएँ और संघर्ष हैं वे केवल निजी नहीं सामाजिक अनुभव की अभिव्यक्ति हैं। यहाँ लेखिका यह दिखाने में सफल होती हैं कि स्त्री का अंतरंग संसार समाज के यथार्थ से कैसे गुँथा हुआ है।

"ये द्वन्द्व की स्थिति है जो स्त्रियों के भीतर निरन्तर परिवार और समाज के दायित्वों को लेकर चलता रहता है ठीक इसी प्रकार का मानसिक द्वन्द्व स्यामीज कहानी मे 'मानसी' व 'रूपसी' के किरदारों द्वारा लेखिका ने व्यक्त किया है असल में इस प्रकार की स्त्रियाँ शायद किसी के बिना अपने आप को अधूरा महसूस करने लगी है तो किसी एक को लेकर कॉम्पलैक्स में भी आ जाती है असल में वो स्त्री ब्यूटी विद्यांइड है कभी उसे और कभी अपने रूप के बिना दोनो मे से किसी एक को चुनना हो तो वो असमंजस में पड़ जाती है और उधर ये भी होता है कि कभी उसे लगता है की उसके बौद्धिक पक्ष के कारण उसके अन्दर की खालिस नारी खतरे में आ गई है और कमी ये कि उसके अन्दर की सामान्य नारी उसके असल बौद्धिक पक्ष को दबा रही है। इस प्रकार स्यामीज कहानी में मनीषा कुलश्रेष्ठ की कथाकारी की वैविध्यता पर आश्चर्य होता है।"[5]

उनके साहित्य में सामाजिक यथार्थ की उपस्थिति केवल पृष्ठभूमि तक सीमित नहीं रहती वह कथानक का सार बन जाती है। चाहे वह जातीय भेदभाव हो, पारिवारिक हिंसा, विवाह संस्था की विफलताएँ, यौनिकता पर सामाजिक नियंत्रण या पारंपरिक स्त्री छवियों की पुनर्रचना—लेखिका इन सभी प्रश्नों को अत्यंत विचारोत्तेजक ढंग से उठाती हैं। इन प्रश्नों के समाधान वे किसी निर्णायक उत्तर में नहीं खोजतीं बल्कि उन्हें पाठक के विवेक पर छोड़ती हैं जिससे साहित्य एक बहुविमर्शीय अनुभव बन जाता है। वह इन संरचनाओं को खंडित करते हुए एक नई संवेदना, नई दृष्टि और नया विमर्श रचती हैं जिसमें स्त्री केवल कथानक की पात्र नहीं बल्कि उसकी रचयिता भी बन जाती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा-साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह केवल शहरी अनुभवों या आधुनिक स्त्री-संघर्षों तक सीमित नहीं रहता वरन् उसमें लोक-संस्कृति, मिथकीय चेतना और भूगोल की गहरी अंतर्गांठ दिखाई देती है। लेखिका अपने रचना-संसार में जिस बारीकी से राजस्थानी लोकजीवन, स्मृति-चित्रों, मिथकीय कथा-वस्तुओं और सांस्कृतिक धरोहर को रचती हैं वह उनके साहित्य को यथार्थपरक सांस्कृतिक पुनर्व्याख्या का सशक्त माध्यम बना देती है। उनकी रचनाओं में मिथक कोई प्राचीन गाथा नहीं स्त्री की चेतना से जुड़ा हुआ वह माध्यम बन जाता है जो आधुनिक समय में उसे अपने अतीत और वर्तमान के बीच पुल की तरह उपयोग करने की क्षमता देता है।

शालभंजिका उपन्यास इसका एक सशक्त उदाहरण है जहाँ मंदिर की मूर्ति के बहाने स्त्री-देह, सामाजिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक प्रतीकों के अंतर्द्वंद्व का चित्रण किया गया है। यह मूर्ति इतिहास के मौन को ढोती हुई वर्तमान की स्त्री के भीतर सुलगती चेतना का बिम्ब बन जाती है। लेखिका इसे केवल एक प्रतिमा के रूप में नहीं रचती बल्कि उसमें स्त्री की आत्मा, उसकी विवशताएँ, उसके निर्णय और उसका विद्रोह भी समाहित करती हैं। मूर्ति और नायिका का संबंध जैसे-जैसे विकसित होता है कथा एक मिथकीय संरचना में बदलती चली जाती है परंतु यह मिथक किसी आदर्श की स्थापना नहीं करता बल्कि वह सामाजिक ढाँचों की आलोचना करता है।

इसी प्रकार मल्लिका, पंचकन्या जैसे उपन्यासों में राजस्थानी भूगोल, किलों की गंध, हवेलियों की छायाएँ और मरुस्थलीय परिवेश केवल पृष्ठभूमि नहीं बल्कि कथा के चरित्रों की चेतना में बसी हुई स्मृति की तरह उपस्थित हैं। लेखिका इन भूगोलों को स्थूल रूप में नहीं बल्कि संवेदना और स्मृति की सूक्ष्म परतों में रचती हैं। यह भूगोल स्त्री के जीवन में एक ऐसी सांस्कृतिक गहराई जोड़ता है जो उसके निर्णय, स्वप्न और संघर्षों को विशेष अर्थ प्रदान करता है। मनीषा की स्त्रियाँ जहाँ एक ओर आधुनिकता से संवाद करती हैं वहीं वे अपने भीतर रचे-पगे लोक से भी जुड़ी रहती हैं। यही द्वैत उन्हें परंपरा को नकारे बिना उस पर सवाल उठाने का सामर्थ्य देता है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की रचनात्मकता केवल विषयवस्तु की दृष्टि से ही सशक्त नहीं है बल्कि उनका कथाशिल्प और भाषा-विन्यास भी हिंदी कथा-साहित्य को एक नई संरचना और सौंदर्यबोध प्रदान करता है। उनका लेखन इस बात का प्रमाण है कि भाषा न केवल विचारों की वाहक होती है बल्कि वह स्वयं एक वैचारिक अधिष्ठान भी बन जाती है। लेखिका की भाषा में जहाँ एक ओर राजस्थानी संस्कृति की गंध है वहीं दूसरी ओर आधुनिक शहरी चेतना का तार्किक प्रवाह भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वह न तो आंचलिकता की सीमाओं में बंधती है न ही कृत्रिम 'शुद्धता' की शरण लेती हैं। उनके शब्द लोक से आते हैं परंतु उनका स्वर समकालीन बौद्धिकता और संवेदनशीलता से गूंजता है।

उनके कथा-शिल्प की संरचना बहुस्तरीय है। मनीषा की कहानियाँ और उपन्यास रैखिक कथनक्रम का पालन नहीं करते। वे समय और स्मृति के भीतर उतरती हैं। घटनाओं को सतही ढंग से क्रमबद्ध करने के बजाय लेखिका पात्रों की स्मृति, संवाद और आत्मसंघर्षों के माध्यम से कथा को रचती हैं। स्वप्नपाश उपन्यास इसका जीवंत उदाहरण है जहाँ समय का बहाव पात्रों के भीतर चलता है और पाठक केवल बाह्य घटनाओं का नहीं बल्कि मनःस्थितियों, सपनों और स्मृतियों का साक्षी बनता है। यह शैली पाठक को कथा से जोड़ती नहीं उसे कथा का सहभागी बना देती है।

कथाशिल्प की दृष्टि से लेखिका की कहानियाँ केवल कथा कहने का माध्यम नहीं हैं वे पाठकों के मन में प्रश्न उत्पन्न करने का यंत्र भी हैं। वे केवल मनोरंजन या सहानुभूति के उद्देश्य से नहीं लिखी गई बल्कि वे विचारों की उथल-पुथल पैदा करने के लिए रची गई हैं। उनका संवाद-विन्यास पात्रों के मनःस्थितियों को उजागर करने का साधन बनता है जो पाठक को सतह से गहराई की ओर ले जाता है। वहाँ घटनाएँ नहीं, संवेदनाएँ केंद्रीय होती हैं और यह संवेदना भाषा के माध्यम से धीरे-धीरे पाठक के भीतर उतरती है। संरचनात्मक दृष्टि से लेखिका का दृष्टिकोण पारंपरिक कथा-रूपों को चुनौती देता है। वह शुरुआत, मध्य और अंत की रैखिक सीमा से बाहर निकलकर कथा को एक वृत्त की तरह रचती हैं जहाँ हर अनुभूति, हर स्मृति, हर प्रतीक कथा को आगे नहीं भीतर की ओर ले जाता है।

बौनी होती परछाईं संग्रह की कहानियाँ इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनमें आदिवासी स्त्रियों की वे व्यथाएँ चित्रित हैं जो केवल भूख और हिंसा की कहानियाँ नहीं बल्कि अस्मिता, पारंपरिक पहचान और सांस्कृतिक अस्तित्व की लड़ाइयाँ भी हैं। इन कहानियों में लेखिका किसी सहानुभूतिपरक या 'बाहरी दृष्टि' से नहीं लिखतीं बल्कि वे इन पात्रों के अंतर्मन से लिखती हैं। वे उनके जीवन को एक "दूसरे" की तरह नहीं देखतीं बल्कि उनके भीतर समाहित पीड़ा, स्वाभिमान और संघर्ष को इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं कि पाठक स्वयं को उनके अनुभव का हिस्सा महसूस करने लगता है।

मनीषा की दृष्टि में वंचित केवल आर्थिक या जातिगत निर्धारण से उपजा हुआ नहीं होता वह मानसिक, सांस्कृतिक और लैंगिक हाशिए पर खड़े लोगों के अनुभवों में भी निहित होता है। वन्या जैसी कहानियाँ आदिवासी स्त्री की जिजीविषा और स्वाभिमान को जिस आत्मीयता से रचती हैं वह साहित्यिक इतिहास में विरल है। यहाँ स्त्री केवल पीड़िता नहीं बल्कि सांस्कृतिक उत्तराधिकारी भी है। वह अपनी देह, भाषा, लोकविश्वास और आत्मसम्मान को बचाए रखने की जद्दोजहद में लगी हुई है। यह संघर्ष शोरगुल से रहित है परंतु उसकी दृढ़ता और स्थायित्व पाठक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।

मनीषा के साहित्य में वंचित वर्गों की उपस्थिति केवल प्रतिनिधित्व का कार्य नहीं करती बल्कि वह एक वैकल्पिक दृष्टिकोण का निर्माण करती है जो मुख्यधारा के साहित्यिक विमर्शों को चुनौती देता है। वह इस दृष्टिकोण से पाठक को परिचित कराती हैं कि संवेदना और न्याय की भाषा केवल सामाजिक वर्गों या विमर्शों में बँटी नहीं जा सकती बल्कि वह मनुष्य की गरिमा और अस्मिता से जुड़ी होती है। यही कारण है कि उनके पात्र—चाहे वे आदिवासी हों, घरेलू कामगार, छोटे नगरों की महिलाएँ या मौन में जीती संवेदनशील आत्माएँ साहित्य के केन्द्र में आकर एक नया दृष्टिकोण विकसित करते हैं।

उनके साहित्य की आलोचना और पाठकीय मूल्यांकन में यह विशेष रूप से रेखांकित किया गया है कि मनीषा कुलश्रेष्ठ ने स्त्री को केवल भुक्तभोगी के रूप में नहीं बल्कि विचार और संवेदना की स्वतंत्र सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। वे पारंपरिक आलोचना के प्रतिमानों को खारिज करते हुए एक ऐसी शैली विकसित करती हैं जो अनुभव, संवेदना और विवेक की त्रिधारा को एक साथ प्रवाहित करती है। उनका लेखन समकालीन हिंदी साहित्य को न केवल विषयवस्तु की दृष्टि से समृद्ध करता है बल्कि उसकी भाषिक बनावट, शैलीगत प्रयोग और शिल्पगत विविधता को भी नवीनता से भर देता है।

मनीषा जी की राजनीतिक चेतना, प्रति पूर्ण सजग रहते हुए स्वस्थ सामाजिक चेतना के परिवेश के सामाजिकता का सन्देश देती है। "मानव समाज के अस्तित्व में रहने के लिए आवश्यक होता है कि वह समस्त समाज के लिए निर्णय लेने वाले विशेषज्ञों का चुनाव करके सरकार का निर्माण करे। नियमों के अधीन सरकार का कार्य जनहित होना चाहिए वही उत्तम राज्य की नीति व राजनीति है समाज का कोई भी पक्ष आज उससे अप्रभावित नही है। लेखिका भी अपने साहित्य मे राजनीति की इस परिभाषा की उपेक्षा नही कर सकी।"[6]

मनीषा कुलश्रेष्ठ ने अपने कहानी संग्रह गंधर्व गाथा के माध्यम से स्वतंत्र भारत की राजनीति की विडंबनाओं, विसंगतियों और कुंठाओं का सजीव चित्रण किया है। राम और कृष्ण के युग से लेकर आज तक भारतीय राजनीति में जो विकृतियाँ विद्यमान रही हैं वे आज भी रूपांतरित रूप में उपस्थित हैं। लेखिका इन राजनीतिक विरूपताओं को जनमानस की पीड़ा और यथार्थ के साथ जोड़कर प्रस्तुत करती हैं। वे न केवल विषय-वस्तु की गंभीरता को समझती हैं, बल्कि उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति में भी सिद्धहस्त हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ सिर्फ राजनीतिक आलोचना नहीं बल्कि एक गहन संवेदनात्मक दस्तावेज भी बन जाती हैं जो समकालीन राजनीति के स्वरूप को पाठकों के सामने उजागर करती हैं।

इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में मनीषा कुलश्रेष्ठ का रचनात्मक अवदान इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा-साहित्य में एक ऐसी धुरी बनकर उभरता है जो परंपरा और आधुनिकता के बीच केवल संतुलन नहीं रचता, बल्कि उन्हें वैचारिक संवाद में रूपांतरित करता है। वे न किसी वाद की कठोरता से बंधी हैं और न ही किसी लोकप्रियता की होड़ में भाग लेती हैं। उनकी रचनाएँ इस युग के साहित्य को दिशा देती हैं, उसे आत्मावलोकन की भूमि प्रदान करती हैं और पाठकों को केवल कथा नहीं दृष्टि देने का कार्य करती हैं।

इस प्रकार शोध के विश्लेषणात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा-साहित्य इक्कीसवीं सदी के हिंदी साहित्य में एक विशिष्ट वैचारिक और सौंदर्यात्मक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है। उन्होंने स्त्री अस्मिता, सामाजिक अंतर्विरोध, आदिवासी चेतना और लोक-संस्कृति को गहन संवेदना और विचारशील दृष्टि से प्रस्तुत किया है। प्रतीकों, मिथकों और भाषिक विविधता के माध्यम से वे कथा को एक जीवंत सांस्कृतिक विमर्श में बदल देती हैं। उनके साहित्य में यथार्थ की जटिलता और समय की आत्मदृष्टि है जो उन्हें समकालीन साहित्य में एक कालजयी रचनाकार बनाती है।

संदर्भ सूची-

1. शान्ति शर्मा, राजरानी शर्मा : मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में स्त्री विमर्श: एक अध्ययन, ISSN: 2581-6918, शोध समागम, ISSN- 2581-6918 (Online), वाल्यूम-03, ईश्यू-04, अक्टू.-दिस. 2020, पृ. 1254
2. वही, पृ. 1254
3. मनीषा कुलश्रेष्ठ : किरदार, राजपाल एण्ड संन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2018
4. नवीन नंदवाना : जीवन के कटु यथार्थ से रू-ब-रू कराती कहानियाँ (विशेष संदर्भ : मनीषा कुलश्रेष्ठ का कहानी संग्रह 'कुछ भी तो रूमानी नहीं'), समवेत, (ISSN : 2321-6131), जुलाई-दिसम्बर, 2020, पृ. 116
5. सुनीता वर्मा : मनीषा कुलश्रेष्ठ के कहानी संग्रह 'गन्धर्व गाथा' मे राजनैतिक परिदृश्य, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, (ISSN Online : 2394-5869), वाल्यूम- 4(12), 2019, पृ. 348
6. वही, पृ. 349